प्राचीन एवं आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान का समीक्षात्मक विवेचन

डॉ. अखिलेन्द्र कुमार*

भारतीय मनोविज्ञान अन्तःकरण से ओत-प्रोत है-[1] पाश्चात्य मनोविज्ञान ने पहले आत्मा को छोड़ा, फिर मन एवं चेतना से किनारा किया और वर्तमान में पाश्चात्य मनोविज्ञान के रूप में जाना जाता है। यद्यपि यह सत्य है कि व्यवहार में कहीं न कहीं से मन और चेतना सन्निहित है। जब अनुभुव अथवा मन की बात होती है तो फ्रायड का भी नाम अवश्य ही आ जाता है। फ्रायड ने मन को तीन भागों में बाँटा है और उसने कामशक्ति की चर्चा की है। अन्तर यह है कि पाश्चात्य मनो वैज्ञानिक केवल व्यवहार को देखते हैं और मनुष्य को पशु मानते है। दूसरे शब्दों में इनकी विचारधारा अर्थ एवं काम से अधिक सम्बद्ध है। भारतीय मनोविज्ञान में आत्मा, मन एवं चेतना को छोड़ा नहीं गया है। भारतीय मनोविज्ञान अंतःकरण की बात करता है एवं धर्म से सम्बद्ध होकर मोक्ष की ओर उन्मुख है। साथ ही भारतीय मनोविज्ञान मानव चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का गहराई से अध्ययन भी करता है, अतः भारतीय मनोविज्ञान को मनोविज्ञान न कह कर आत्मविज्ञान कहना अधिक समीचीन है।

पुरूषार्थ चतुष्टय की अवधारणा- जीवन लक्ष्य के आलोक में भारतीय मनौवैज्ञानिकों ने अत्यन्त प्राचीन काल से चार पुरूषार्थो को प्रतिपादित किया है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भाषा में इन्हीं पुरूषार्थों के लिए मूल्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। भारतीय चिन्तन में चतुर्विध पुरूषार्थ हैं - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जो जीवन की पूर्णता हेतु अनिवार्य माने गये हैं। पाश्चात्य मनोविज्ञान ने केवल दो पुरूषार्थों- अर्थ एवं काम को ही जीवन का परम लक्ष्य मान लिया है। फलस्वरूप भौतिक विज्ञान की कसौटियों पर खरा उतरने के लिए उसने सर्वप्रथम आत्मा का त्याग किया, उसके पश्चात् मन और चेतना का। आज वह केवल व्यवहार की ही बात करता है। व्यवहार में भी केवल वह व्यवहार जिसका निरीक्षण किया जा सकता है तौला या नापा जा सकता है। पाश्चात्य मनोविज्ञान में पला और बढ़ा मनुष्य अर्थ और काम के वशीभूत होकर आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त करने और उस सम्पन्नता के माध्यम से काम की तृप्ति में लगा हुआ है। डेलर्स आयोग के प्रतिवेदन में अनेक द्वन्दों का रोना रोया गया है जैसे स्थानीय बनाम वैश्विक, वैयक्तिक बनाम सार्वभौमिक, परम्परा बनाम आधुनिक, आल्पकालीन संदर्भित बनाम दीर्घकालीन संदर्भित, स्पर्धा बनाम अवसर की समानता तथा ज्ञान का विस्फोट बनाम मानव को समझने की क्षमता आदि। ये सभी द्वन्द्व अर्थ और काम के नग्र तांडव के प्रतिफल हैं। इन द्वन्द्वों का व्यावहारिक समाधान भारतीय जीवन दर्शन, भारतीय मनोविज्ञान एवं शिक्षा मनोविज्ञान के अनुसरण से ही सम्भव है क्योंकि भारतीय चिन्तन में अर्थ एवं काम को धर्म एवं मोक्ष द्वारा उद्देश्योन्मुख बनाकर नियंत्रित और उर्ध्वगामी बनाया गया है। धर्म ज्ञान को आचरण से सतत जोड़ते रहने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की पहली विशेषता है- निरन्तरता और अखण्डता का अनुभव करते रहना।

लोक कल्याण की अवधारणा- पाश्चात्य मनोविज्ञान विश्लेषणात्मक है, जबकि भारतीय मनोविज्ञान संश्लेषणात्मक है जो निरन्तरता एवं अखण्डता को किसी स्तर पर विस्मृत करने के लिए तैयार नहीं है। अर्थ एवं काम लौकिक पुरूषार्थ है जबकि धर्म एवं मोक्ष अलौकिक पुरूषार्थ है। भारतीय मनोविज्ञान में दोनों को आवश्यक, परस्पर पूरक एवं परस्पर सहायक माना गया है। फलस्वरूप व्यक्ति के पूर्ण विकास के लिए उसके सभी गुणों एवं क्षमताओं के विकास की संतुलित प्रक्रिया ही भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान का अभीष्ट है। भारतीय मनोविज्ञान की यह मान्यता है कि व्यक्ति का विकास सामाजिक एवं आर्थिक अवस्था के आधार पर इस प्रकार होना चाहिए कि जीवात्मा अर्थात् व्यक्ति का उन्नयन हो एवं वह मोक्ष की ओर बढ़े अर्थात् उसमें जगत कल्याण की भावना विकसित हो। अतः भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान का उद्देश्य हैः

''आत्मनो मोक्षार्थम जगत हिताय च ॥''[2]

आत्म साक्षात्कार की अवधारणाः- आत्म साक्षात्कार की अवधारणा से सम्बन्धित भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान के दो मुख्य सम्प्रत्यय हैं- 'स्वभाव' एवं 'स्वधर्म'। 'स्वभाव' को आधुनिक मनोविज्ञान में (मनोदशा) कहते हैं जो व्यक्ति की आदतों, पसन्दगी या 'पापसन्दगी' का सचमुच्चय समझा जाता है। भारतीय मनोविज्ञान में स्वभाव अन्तरात्मा से उद्भूत होने वाला वास्तविक 'स्व' है। यह आत्मा स्वयं है। यह आनन्द का स्रोत है। यह प्रकाश है, अज्ञान के अँधकार का समूल नाश करने वाला अखण्ड, अजर, अमर, नंदा दीप है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य इस आत्मा को अनावृत करना है ताकि वह अपने को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त कर सके। यही कारण है कि सभी भारतीय शिक्षाशास्त्रीयों ने यह माना है कि ज्ञान अन्तर्निहित है और उसका प्रकटीकरण करना ही शिक्षा है। शिक्षा द्वारा ही वयक्ति अपने वास्तविक 'स्वभाव' को पहचानता है। भारतीय मनोविज्ञान धर्म पर आधारित है। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य पशु या यंत्र नहीं है। आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान मनुष्य को

* **प्रधानाचार्य, श्री नेहरू स्मारक इण्टर कालेज, नहोरा, जौनपुर**

एक पशु या एक यंत्र मानता है। भारतीय शिक्षामनोविज्ञान की दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में निराला एवं अपने विशिष्ट आदर्श कार्य व्यवहार को लेकर जन्मा है। सही दिशा एवं समुचित नियमों के पालन द्वारा उस कर्त्तव्य की पूर्ति करना ही उसका 'स्वधर्म' है। धर्म को यहाँ आधुनिक पंथ या रिलीजन के संकुचित अर्थ में नहीं लेना चाहिए। उसे उसी प्रकार लेना चाहिए जैसे अग्नि का धर्म 'जलाना' है और पानी का धर्म 'बहाना' है 'स्वधर्म' से यहाँ आशय व्यक्ति की बुद्धि और विकास को लय, तालबद्ध करने वाले तथा उसे निर्देशित करने वाले आंतरिक नियमों से है। प्रत्येक व्यक्ति के पास अपने विकास के लिए निजी लय और ताल होता है। प्रत्येक व्यक्ति के विकास का अपना एक विशिष्ट चक्र होता है, उसके पास अपने विकास का एक मार्ग होता है जो व्यक्ति को वही कार्य करने में सहायक सिद्ध होता है जिसके लिए वह जनमा है। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान इसी बात पर बल देता है कि व्यक्ति अपने स्वभाव को पहचाने और स्वधर्म पर चले। स्वभाव और स्वधर्म के सम्प्रत्यय को माँसलो (1962) के आत्मसिद्धीकरण से और जुंग (1936) के जातीय अचेतन से अत्यधिक विस्तृत एवं व्यापक सम्प्रत्यय समझना चाहिए।

अनेकता में एकता की अवधारणाः-भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान जीवन की वैयक्तिक विभिन्नताओं को स्वीकार करते हुए उन्हें एकता के शाश्वत सूत्र में पिरोने का प्रयास करता है। यह आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान के परस्पर विरोध द्वन्द्व आदि धारणाओं के विपरीत परस्परावलम्बन, परस्परपूरकता, अनुकूलता एवं परस्पर सहयोग द्वारा व्यक्ति को सर्वांगीण विकास की ओर उन्मुख होने का निर्देश देता है। भारतीय मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वागीण विकास पर बल देता है व्यक्ति के सर्वागीण विकास की भारतीय संकल्पना आधुनिक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों, मनोविश्लेषणवादियों एवं शिक्षाशास्त्रीयों को बहुत पीछे, छोड़ देती है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्तित्व बहुस्तरीय एवं बहुआयामी संरचना है। इसमें भौतिक/शारीरिक (अन्नमय), प्राणिक/सांवेगिक (प्राणमय), मानसिक (मनोनय), बौद्धिक (विज्ञानमय) एवं शुद्ध अध्यात्मिक (आनन्दमय) स्तर/कोश आयामों का सम्मिलन है।

मन की अतिव्यापक संकल्पना- पाश्चात्य शिक्षा मनोविज्ञान मन की संकल्पना में भी संकुचित है। वह मन को स्वतंत्र सत्ता मानता है किन्तु भारतीय मनोविज्ञान मन को अंतःकरण का एक घटक मानता है। जैसा कि इस श्लोक से स्पष्ट है-

मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तं करणमन्तरम् ।
संशयो निश्चयो गर्वः स्मरणं विषया इमे।।[3]

अंतः करण के चार घटक हैं- मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त मन से वितर्क और संशय होता है। बुद्धि से यह निश्चय होता है कि क्या उचित है, क्या अनुचित; क्या कर्त्तव्य है, क्या अकर्त्तव्य; क्या भला है, क्या बुरा है; यह वस्तु अमुक है या नहीं इत्यादि। अहंकार से व्यक्ति गर्व या अहंभाव की अभिव्यक्ति करता है। यह मैं हूँ, यह मेरी है, मैं ही गुणी हूँ, बली या धनी हूँ इत्यादि। चित्त से स्मरण होता है कि यह अमुक है, अमूक के समान है, इसे मैंने कहाँ देखा, सूना, सूँघा या ग्रहण किया था इत्यादि। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों (फ्रायड आदि) ने मन को तीन स्तरों पर विश्लेषित किया है- चेतन, अचेतन, एवं अवचेतन और इनमें इड, अहम्, एवं पराहम्, आदि शक्तियों की कल्पना की है। भारतीय मनोविज्ञान में मन को एक समग्र रूप में मानते हुए उनकी पाँच अवस्थाएँ हैं- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरूद्ध। मन की चंचलता या अस्थिरता को क्षिप्तावस्था कहते हैं। काम, क्रोध, निद्रा आदि के वशीभूत होना ही मूढ़ावस्था हैं। इस अवस्था में मनुष्य सामान्य बुद्धि एवं विवेक को तिलांजलि देकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, भय, घृणा, शोक आदि के वशीभूत रहता है। जब मन चंचलता का परित्याग कर सूखदायक वृत्तियों में स्थिर हो जाता है और केवल सुख का ही आस्वादन करने में मग्न हो जाता है तो मन की अवस्था को विक्षिप्तावस्था कहते हैं। वाह्यवस्तु, काल्पनिक विचार अथवा कल्पना में मग्न होकर निश्चल और निष्कम्प दीपशिखा की भाँति जब मन स्थिर हो जाता है तो इस मन की एकाग्र अवस्था कहते हैं। मन की निरूद्धावस्था में कोई बाहरी या आन्तरिक अवलम्ब नहीं होता। मन सत्ताहीन हो जाता है और आत्मदर्शन की ओर प्रवृत्त होता है।

आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान क्षिप्ता और मूढ़ावस्था और एक सीमा तक विक्षिप्तावस्था तक की ही बात करता है। एकाग्र एवं निस्द्धावस्था उसके लिए कल्पना मात्र है।

भारतीय मनोविज्ञान में अभिप्रेरणा अभ्युदय एवं निश्रेयस दोनों के लिए हैं- जहाँ तक मानवीय अभिप्रेरणा का प्रश्न है, इस सम्प्रत्यय पर भी भारतीय मनोविज्ञान एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान में अन्तर स्पष्ट दृष्टव्य है। आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान व्यक्ति के सुखी जीवन के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति को आवश्यक मानता है जबकि मनोविज्ञान यह मानता है कि आवश्यकताएँ कभी भी विश्राम न लेने वाली इच्छाएँ हैं, अतः सुखी जीवन के लिए आवश्यकताओं को घटाकर कम से कम कर देने की प्रवृत्ति एवं सर्वथा कामनारहित हो जाने की स्थिति अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार पाश्चात्य मनो विज्ञान आवश्यकताओं की निरन्तर पूर्ति पर बल देता है जबकि भारतीय मनोविज्ञान आवश्यकताओं की पूर्ति के विधि-निषेधों पर विशेष बल देता है। पाश्चात्य मनोविज्ञान मनुष्य की अभिप्रेरणा में वर्तमान को अधिक महत्व देता है, जबकि भारतीय मनोविज्ञान में मनुष्य की अभिप्रेरणा उसके वर्तमान जीवन के साथ-साथ उसके पूर्व जन्म तथा मृत्यु के उपरांत के तत्त्वों से भी प्रभावित है।

इसका अर्थ यह नहीं है भारतीय मनोविज्ञान अभ्यूदय या ऐहिक सम्पन्न जीवन की परिकल्पना से मुख मोड़ता है। व्यक्ति की ऐहिक इच्छाओं एवं एषणाओं को नियंत्रित करने की बात भी इसमें कही गयी है किन्तु सामाजिक एवं राष्ट्रीय अभ्युदय पर सर्वदा बल दिया गया है। यतो अभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः सः धर्मः। प्रेरणाओं को एषणाओं के रूप में जैसे लोकेषणा, वित्तेषणा एवं पुत्रेषणा के रूप में देखा गया है। इन एषणाओं को व्यक्तिगत स्तर पर नियंत्रित एवं न्यूनतम स्तर पर ले जाने की बात तो अवश्य कही गयी है क्योंकि एषणाओं को व्यक्तिगत स्तर पर नियंत्रित एवं न्यूनतम स्तर पर ले जाने की बात तो अवश्य कही गयी है क्योंकि एषणाओं से मुक्ति मन की चंचलता को कम कर आत्मा के प्रकाश को अनावृत करती है। यह आत्म प्रकाश सर्वे भवन्तु सुखिनः के लिए प्रयत्नशील होने की प्रेरणा देता है। आद्यश्री शंकराचार्य जी का कहना है किः-

जगतः स्थिति कारणम् साक्षात् प्राणिनाम् अभ्युदय निश्रेयस हेतु सः धर्मः। [4]

न केवल अभ्युदय, न केवल निश्रेयस दोनों एक साथ चलते हैं।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम पाश्चात्य मनोविज्ञान को व्यक्तिनिष्ठ, विश्लेषणात्मक, द्वन्द्वात्मक एवं भौतिक भोगवादी एवं अधोगामी विशेषताओं से युक्त पाते हैं जबकि भारतीय मनोविज्ञान व्यक्ति का विकास व्यक्ति में समष्टि की ओर एवं समष्टि से परमेष्टि की ओर की अवधारणा पर आधारित है। अतः यह विश्लेषणात्मक न होकर संश्लेषणात्मक, द्वन्द्वात्मक न होकर समन्वयात्मक एवं भौतिकवादी तथा अधोगामी न होकर आध्यात्मिक, त्यागवादी एवं उर्ध्वगामी है। व्यावहारिक स्तर पर भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की वर्तमान प्रचलित प्रक्रिया को निम्नलिखित नकारात्मक बिन्दुओं से मुक्त करने का प्रयास करता है।

भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा को ध्रुवीय प्रक्रिया नहीं मानता है। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान से शिक्षक, छात्र और पाठ्य विषय सभी एक ही बिन्दु पर एकात्म हैं, इसी में सहनाववतु सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै, तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्धिषावहै। (हे परमात्मन्! आप हम गुरू शिष्य की साथ-साथ सब प्रकार से रक्षा करें, हम दोनों द्वारा अध्ययन की हुई विद्या तेजस्विनी हो, हम कहीं किसी से भी विद्या में परास्त न हों और हम दोनों जीवन भर परस्पर स्नेह सूत्र से बंधे रहें हमारे अंदर परस्पर कभी द्वेष न हो। हम दोनों के तीनों तापों की निवृत्ति हो) की परिकल्पना को साकार किया जाता है। आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान की ध्रुवीय परिकल्पना में शिक्षक और विद्यार्थी को एक दूसरे के सम्मुख शत्रु के रूप में खड़ा कर दिया गया है।

भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा को किसी सीमा में नहीं बाँधता है। इसमें शिक्षा विद्यालयों की चहारदीवारी में कक्षाओं और कालांशों (घंटियों) में नहीं बाँधी गई है। अपितु शिक्षा को बहुत ही व्यापक सम्प्रत्यय के रूप में देखा गया है। यहाँ शिक्षार्थी को अपनी मति और अपनी गति से सीखने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान में गुरू शिष्य सम्बन्ध समय से बँधा नहीं है। गुरू एवं शिष्य चौबीस घंटे, बारह महीने सर्वत्र पवित्र शैक्षिक सम्बन्ध में बँधे हुए हैं। गुरू को अपने आचरण से विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करना होता है। शिष्यों के सर्वांगीण विकास हेतु गुरू सदैव जागृत एवं सचेष्ट रहता है। वह दस से चार बजे तक पढ़ाने वाला विद्यालयी वेतन भोगी कर्मचारी नहीं है। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान में पाठ्यक्रम सर्वदा लचीला रखा जाता है। उसे कभी भी समयबद्ध नहीं किया जाता है। शिक्षा का पाठ्यक्रम वर्तमान पाठ्यक्रम की तरह आठ या नौ महीनों की सीमा में बँधा हुआ नहीं है। मेधावी छात्र कम समय एवं अल्पज्ञ अधिक समय ले सकते हैं किंतु सभी को पाठ्यक्रम में दक्षता प्राप्त करना अनिवार्य है।

भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्तित्व/व्यवहार का विभाजन नहीं करता है। वह ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों में भी एकात्मकता पर बल देता हैं। आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान इन तीनों को इतना विश्लेषित करता है कि ये तीनों स्वतंत्र सत्ता के रूप में विकसित होकर एक दूसरे के विपरीत सोचने या करने की प्रेरणा देने लगते हैं। आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान में पले और पढ़े व्यक्ति में ज्ञान, भाव और कर्म में जितना अन्तर दिखाई देता है, उसे उतना ही अधिक सफल व्यक्ति माना जाने लगा है किन्तु भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान मनसा, वाचा, कर्मणा एक होने पर अधिक बल देता है और ऐसे ही व्यक्तित्व को श्रेष्ठ व्यक्तित्व मानता है। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान चिन्तन एवं मनीषा में शिक्षाा को व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति से जोड़ने वाली प्रक्रिया माना गया है एवं शिक्षा को राज्य सत्ता से मुक्त रखने की बात कही गई है क्योंकि शिक्षाा समाज का दायित्व है। सरकार इसे संरक्षण दे सकती है किन्तु इसकी स्वामी नहीं बन सकती।

भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान मनुष्य को इस प्रकार से शिक्षा देने का पक्षधर है कि शिक्षा केवल सुखोपभोग की वस्तु ही न बनकर रह जाए अपितु वह श्रम, शील, शक्ति, ज्ञान एवं चरित्र के विकास का मूलाधार बने। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा को संस्कारित करने वाली प्रक्रिया समझता है एवं यह विद्यार्थियों को रूचिकर ढंग से समुचित शिक्षा देने के पश्चात् भी उसमें सुख की कामना नहीं भरता। जैसा कि इस श्लोक से भी स्पष्ट है-

सुखार्थिनां कुतो विद्या विद्यार्थिनां कुतो सुखम् ।
सुखार्थी चेत् त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम् ॥[5]

सुखार्थी को विद्या को त्यागना होता है और विद्यार्थी को सुख क्योंकि सुखार्थी को विद्या और विद्यार्थी को सुख प्राप्त नहीं होते।

भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान में शिक्षक की सत्ता आदेश पालक की नहीं है अपितु शिक्षक को बालकों के चरित्र निर्माण का अत्यन्त सृजनशील, सशक्त, शक्तिपुंज माना जाता है जो अपने ज्ञान, उदात्त चरित्र एवं रचनाधर्मिता को अपने शिष्यों में स्थानान्तरित करना चाहता है। वह वर्तमान शैक्षिक संरचना के अध्यापक की तरह सत्ता के आदेश का पालन करने वाला नौकर मात्र नहीं है। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान में अध्यापक / शिक्षक पाठ्यक्रम का निर्माण, अधिगम एवं अभ्यास और मूल्यांकन का दायित्व स्वयं लेता है। वह सब कार्य किसी बोर्ड या विश्वविद्यालय के अधिकार क्षेत्र में नहीं मानता है। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान इस सत्य में विश्वास करता है कि शिक्षा का माध्यम कोई विदेशी भाषा नहीं हो सकती। शिक्षा केवल मातृ भाषा में ही दी जा सकती है। यदि हम शिक्षा विदेशी भाषा में देते है तो हम वैचारिक, बौद्धिक एवं मानसिक स्तर पर स्वतंत्र अथवा मुक्त नहीं हो सकते। इस मुक्ति के अभाव में सृजनशीलता हमसे कोसों दूर चली जाती है। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में केवल प्रवचन विधि का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि विद्यार्थी को स्वयं सीखने का अवसर प्रदान किया जाता है। उन्हें श्रवण, मनन, निदिध्यासन, प्रश्नोत्तर, संवाद एवं प्रयोग का अधिक से अधिक अवसर दिया जाता है। भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान बल केन्द्रित, क्रिया आधारित, शिक्षण विधियों का प्रयोग करता है। इसमें केवल लिखित परीक्षा को कभी भी मान्यता नहीं दी गई हैं इसमें मूल्यांकन और वह भी कसौटी संदर्भित मूल्यांकन होता है। जिसमें कसौटी पर शत-प्रतिशत खरा उतरने पर ही उत्तीर्ण करने को मान्यता दी जाती है।

अंततः हम कह सकते हैं कि पाश्चात्य शिक्षा मनोविज्ञान अर्थ और काम पर आधारित होने के कारण सामान्य जन और जीवन के लिए तो महत्वपूर्ण स्थान रखता है किन्तु भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान अर्थ काम के साथ धर्म और मोक्ष को जोड़कर व्यक्ति को मात्र इन्द्रिय सुख से ऊपर उठा कर आत्मिक आनन्द की ओर,व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठाकर समष्टि के अभ्युदय की ओर एवं व्यक्ति की समस्त अन्तर्निहित शक्तियों का विकास कर उसे परिपूर्ण मानव बनाकर उसे सर्वे भवन्तु सुखिनः तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से ओतप्रोत करने का कार्य करता है। ऐसा इसलिए है कि भारतीय मनोविज्ञान का विकास भारतीय जीवन दर्शन की पृष्ठभूमि में अति प्राचीन काल से हुआ है। भारतीय मनोविज्ञान की चिन्तन धारा ने पाश्चात्य जगत को भी प्रभावित किया है। मनोविश्लेषणवादी मानवतावादी एवं समग्रवादी मनोवैज्ञानिक विचारधाराएँ इसके स्पष्ट प्रमाण हैं।भारतीय मनोविज्ञान के प्रभाव की स्पष्ट झलक यूनेस्को को प्रेषित इक्कीसवीं शताब्दी के लिए शिक्षा पर अन्तर्राष्ट्रिय शिक्षा आयोग (1996) के प्रतिवेदन में दृष्टिगत होती है। इस प्रतिवेदन में शिक्षा के जिन चार स्तम्भों यथा- जानने का अधिगम सीखने का अधिगम इकट्ठे रहने का अधिगम एवं बनने का अधिगम की चर्चा की गयी है, वे चारों ही भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान के अति प्राचीन आधार रहे हैं क्योकि भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान सदा से ही इस बात पर बल देता है कि हमें सीखना नहीं है अपितु सीखा कैसे जाता है, यह बताना है। सीखना केवल सीखने के लिए नहीं अपितु उसके अनुरूप आचरण भी करना है यह सीखकर एक साथ रहना, एकात्म भाव से रहना यही भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान का कार्य है एवं अंततः सीखना यह है कि हम अपने 'स्व- को पहचानें और उस 'स्व' के अनुरूप विकास करें।

भारतीय मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की व्यापक संकल्पना है- व्यक्तित्व का सम्प्रत्यय वैसे तो पाश्चात्य आधुनिक मनोविज्ञान में बहुत व्यापक है किन्तु यहाँ पर भी वह बौना सिद्ध होता है। आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान में समस्त मनोशारीरिक गुणों को समन्वय और उस समन्वय से जनित अद्वितीयता को ही व्यक्तित्व मान लिया गया है। यह व्यक्ति के वातावरण एवं वंशानुक्रम की परस्पर क्रिया की परिणति है किन्तु भारतीय मनोविज्ञान व्यक्ति की वंश परम्परा और उसके वातावरण को बहुत ही व्यापक दृष्टि से देखता है। वंश परम्परा में व्यक्ति के पूर्व जन्म संस्कार भी अन्तर्निहित हैं जबकि आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान वंशानुक्रम को केवल एक प्राणी वैज्ञानिक घटना मानता है एवं वातावरण भी व्यक्ति के शरीर के इन्द्रियजनित अनुक्रियाओं तक ही सीमित हैं। इसमें व्यक्तित्व को व्यक्ति की एक अलग पहचान मात्र मानकर उसे अन्य व्यक्तियों से अलग थलग करने का प्रयास किया जाता है। उसके विपरीत भारतीय मनोविज्ञान में व्यक्तित्व 'स्वधर्म' एवं 'स्वभाव' से निर्धारित होने के पश्चात व्यापक 'स्व' अर्थात् परमात्मा या सभी आत्माओं से अभिन्न हो जाता है। व्यक्तिगत भिन्नता के साथ व्यक्तिगत भिन्नता के साथ व्यक्तित्व की मानव मात्र के साथ यह अभिन्नता भारतीय मनोविज्ञान की अपनी विशिष्टता है।

संदर्भ :

1. उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान – डॉ0 एस0पी0 गुप्ता एवं डॉ0 अलका गुप्ता, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
2. भारतिय दर्शन- प्रो. वी.एन. सिंह, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
3. वेदान्द परिभाषा– धर्मराजाद्धवरिन्द्र, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
4. वैशेषिक दर्शन- महर्षि कणाद, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
5. मित्रलाभ- विष्णुगुप्त, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

●